सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध सिक्किमी संघर्ष

ए. सी. सिन्हा*

भारत से अंग्रेजी उपनिवेशवाद के पलायन के उपरान्त भी सिक्किम, भूटान और नेपाल के हिमालयी रजवाड़े अपने सामन्ती प्रशासन को बचाने में सक्षम हुए। यहाँ की जनता अत्यन्त ही प्रताड़ित जिन्दगी जी रही थी। नागरिक जीवन का अभाव था; शिक्षा, दवा-दारू की व्यवस्था, सड़कें, समाचार-पत्र का नामोनिशान नहीं था। सत्ता सामन्त फिजूलखर्च और ऐयाशी की जिन्दगी जी रहे थे, तो आम जनता अभाव, अशिक्षा बीमारी, और अत्यन्त ही क्रूर बेगार व्यवस्था से कुचली जा रही थी। सामन्तशाही अत्यन्त ही दमनकारी थी; जनता में भय और आतंक छाया हुआ था। यहाँ तक कि प्रशासन के विरुद्ध आवाज उठाने वाले को जीवित अवस्था में कच्चे चमड़े के थैले में बन्द कर उफनाती नदियों में बहा देना आम बात थी।

इन तीनों रजवाड़ों में सिक्किम सबसे छोटा, विकसित और अंग्रेजों का विशेष कृपापात्र था। यहाँ पर आवागमन के साधन, शिक्षा की व्यवस्था और दवादारू की आपूर्त्ति की व्यवस्था 20वीं सदी के आरम्भ में ही कर ली गई थी। इसके दक्षिण में भूतपूर्व सिक्किमी भू-भाग दार्जिलिंग, अवस्थित है, जिसे अंग्रेजों ने एक हिल स्टेशन के रूप में 19वीं सदी के मध्य में ही विकसित कर लिया था। सिक्किम और दार्जिलिंग भारत-तिब्बत व्यापार मार्ग पर अवस्थित हैं। इस कारण इनके साधनों का पहले विकास किया गया। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में जन जागरण का सूत्रपात भी सर्वप्रथम सिक्किम में ही हुआ। यह जनचेतना प्रायः सामन्तवाद के विरुद्ध प्रकट हुई। परन्तु इस विरोध को साम्राज्यवाद के विरोध का ही एक रूप समझना उचित होगा; क्योंकि उपनिवेशी सरकार के समर्थन के बिना इन रजवाड़ों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता।

* प्रोफेसर ए. सी सिन्हा, पूर्व आचार्य समाजशास्त्र विभाग, पूर्व संकायाध्यक्ष, पूर्वोत्तर पार्वत्य विश्वविद्यालय, शिलांग, 793022। सम्पर्क : डी7/7331, बसन्त कुंज, नयी दिल्ली, 110070

सिक्किम की ऐतिहासिक और प्रजातीय पृष्ठभूमि

आज का सिक्किम ऐतिहासिक सिक्किम का एक छोटा स्वरूप है। कहते हैं कि करीब 400 वर्ष पहले किरातवंशीय लेप्चा, लिम्बू और मगर समुदाय की जनजातियाँ हिमालयी गुफाओं और कंदराओं में रहती थीं और कन्द-मूल खाती थीं। केन्द्रीय राज्य व्यवस्था का अभाव था; ये जनजातियाँ अपने मुखियाओं के अधीन अपने गाँवों में निवास करती थीं। लेप्चा लोग अपनी भूमि को कन्दराओं का देश (माल्यांग) कहते थे। माल्यांग के पड़ोसी भोट देश (तिब्बती) के लोग इसे 'चावल का प्रदेश' (डेनजाँग) के नाम से जानते थे। तिब्बती समुदाय भगवान बुद्ध की भूमि भारतवर्ष को पुण्य भूमि मानता है और विभिन्न बौद्ध धर्मस्थलों का तीर्थाटन करता है। अपने भारत भूमि के तीर्थाटन के क्रम में तीन तिब्बती भिक्षु सिक्किम से गुजरते हुए इसे धर्मदेश बनाने के लिए प्रेरित हुए। कुछ विचार-विमर्श के पश्चात इन्होंने खुद धर्माध्यक्ष बनने के स्थान पर किसी प्रभावशाली भोटिया गृहस्थ को राजा बनाने का निश्चय किया। इसी ऊहापोह की स्थिति में भिक्षुओं की भेंट फुंटसो नामक भोटिया कृषक से हुई जो एक जोड़ी याक जोत कर हल चला रहा था। फुंटसो ने ताजे दूध से भिक्षुओं का स्वागत किया, जिसे आगंतुकों ने शुभ संकेत माना। कुछ विमर्श के बाद भिक्षुओं ने फुंटसो का धर्मराजा के रूप में अभिषेक किया। और तो और भिक्षु नामग्याल ने धर्म राजा (चोग्याल) फुण्टसो को अपने नाम की पदवी दे डाली। फलस्वरूप सिक्किम का राज परिवार कालान्तर में 'नामग्याल' कहलाया, महाराजा फुंटसो नामग्याल ने प्रमुख भोटिया सभासदों (Kalons) और लेप्चा मुखियायों को क्षेत्रीय प्रशासक (Dzongpens) नियुक्त किया। दोनों समुदायों के वे एक-एक दर्जन परिवार बौद्ध बन गए, आपस में शादियाँ रचाईं; और सिक्किम के बहुचर्चित सत्ता-सामन्त 'काजी'[1] कहलाए। किंवदन्ती है कि एक भोटिया काजी की नवब्याहता लिम्बु कन्या का सद्य निर्मित सुसज्जित आवास में स्वागत किया गया, तो वह अपनी मातृभाषा लिम्बू में चहक उठी, सुखीम (नया घर)। विभिन्न उच्चारणों से भटकते हुए सिक्किम शब्द की ऐसी ही व्युत्पत्ति हुई।

कहते हैं कि आरम्भ में सिक्किम की सीमा उत्तर में चुम्बी घाटी (तिब्बत), पूरब में पारो घाटी, दक्षिण में नक्सलवाड़ी और तितालिया तक और पश्चिम में लिम्बुआन

1. भोटदेश (तिब्बत) के निवासी व्यापार, चरवाही या तीर्थाटन के लिए जब हिमालय पार करते हैं तो स्थानीय समुदाय उन्हें भोटिया नाम से पुकारते हैं। यह एक वर्णनात्मक शब्द है जैसे पहाड़ से 'पहाड़िया', उड़ीसा से 'उड़िया'। भोटियाओं में काजी सामन्त होते हैं। तिब्बती और भोटिया भाषा के विद्वान शरत्चन्द्र दास के मुताबिक जब भोटिया सभासद पुर्णिया या दिनाजपुर के स्थानीय मुसलमान सूबेदारों से मिलने आते थे तो तराई (मोरंग) के लोग इन्हें 'काजी साहब' कह कर पुकारते थे। कालान्तर में सामान्य भोटियाओं से अलग पहचान के लिए सिक्किमी सामन्त 'काजी' के नाम से जाने गए।

(नेपाल) तक फैली हुई थी। परन्तु 18वीं सदी का उत्तरार्द्ध नामग्याल राजाओं के लिए कष्टकारक सिद्ध हुआ। पश्चिम में गोरखा नरेश पृथ्वी नारायण शाह (1728-1775) और उनके उतराधिकारियों के हमले होते रहे, तो पूरब से भूटान का देवराजा पूर्वी सिक्किम पर धावा बोलता रहा। इस प्रकार तीस्ता नदी के पूरब का क्षेत्र (आज का कालिमपोंग) भूटान ने हथिया लिया तो तीस्ता और मेची नदियों के बीच की भूमि (दार्जिलिंग) नेपाल ने दखल कर ली। स्वाभाविक है इन स्थानों पर कुछ नेपाली बस भी गए। गुरखा जेनरल जौहर सिंह थापा के नाम पर 'जोरथांग' स्थान बसाया गया। खूँखार गोरखा जेनरल काजी दामोदर पाण्डेय ने 1789 की मकर संक्रान्ति के दिन तीस्ता और रंगीत नदियों के संगम पर अपनी रक्त रंजित तलवार को धोकर युद्ध की समाप्ति की घोषणा की। यही स्थिति अगले 25 सालों तक बनी रही। आंग्ल-नेपाल युद्ध के उपरान्त सुगौली की संधि के अनुच्छेद 2 (5) के अनुसार मेची नदी के पूरब का क्षेत्र अंग्रेजों के हाथ आया। अपने भविष्य के स्वार्थों को ध्यान में रखकर अंग्रेजों ने 'सिक्किमपति' राजा से 10 फरवरी 1817 को तितालिया की सन्धि की, जिसके अनुसार नेपाल से प्राप्त भूतपूर्व सिक्किमी क्षेत्र उसको सुपुर्द कर दिये गए। यह अन्य बात है कि आनेवाले चार दशकों में यह सारा क्षेत्र अंग्रेजों ने हथिया लिया। सिन्चुला की सन्धि के बाद कालिमपोंग मिलाकर दार्जिलिंग जनपद की स्थापना की गई। सिक्किम से दार्जिलिंग लेकर ऐसे विकास किया गया ताकि तिब्बत से होनेवाले व्यापार में अंग्रेजों को अबाध सुविधा होती रहे।

1880 का दशक सिक्किमी राज परिवार के लिए कष्टकारक सिद्ध हुआ। महाराजा थुटुब सपत्नीक कालिमपोंग, कुर्शेआँग और दार्जिलिंग में नजरबन्द कर लिए गए। राज्य का प्रशासन रेजिडेंट जॉन क्लाउड ह्वाइट (1854-1918) को सुपुर्द किया गया। अपने 20 वर्षों के एकछत्र प्रशासन में ह्वाइट ने सिक्किम की काया पलट कर दी। सिक्किम की अर्थव्यवस्था और राजस्व की वृद्धि के लिए सिक्किम की पहाड़ी जंगली और बंजरभूमि को नेपालियों को आबंटित कर दिया। अर्थव्यवस्था को मुद्रा पर आधारित कर वस्तु-विनिमय (Barter System) को बन्द किया। सड़कें, स्कूल, अस्पताल बनवाए; फलों, शाक-सब्जियों की खेती, दस्तीकारी का आरम्भ किया। राज्य की खेती योग्य जमीन का सर्वे कर नियत राजस्व पर ठीकेदारों (lessees) को आवण्टित कर दी। इन ठीकेदारों को पुलिस, न्यायाधिकारी और कारागार रखने का अधिकार दिया गगा। आम जनता से वसूल की जानेवाली दण्ड की रकम राज्य और ठीकेदारों में बँट जाती थी। ऊपर से कई प्रकार के बेगार की प्रणाली थी। 1940 आते-आते यह व्यवस्था अत्यन्त ही क्रूर और आततायी बन गई कि जनता में त्राहि-त्राहि मच गई। परन्तु महाराजा टाशी नामग्याल धार्मिक आख्यानों का चित्रण करते रहे और उनकी प्रजा 'कुर्वा' 'बैठी' 'भग्रलंगी' और 'कानोभारी' नामक बेगार करती हुई दम तोड़ती रही।

जनचेतना का उदय और सामन्त विरोधी लहर

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त यह साफ होने लगा था कि भारत में अँग्रेजी राज्य का अन्त शीघ्र होगा। परन्तु हिमालयी रजवाड़ों को अपना विशेष प्रभाव क्षेत्र मानने वाले अँग्रेज प्रशासक अपनी तिकड़मों से वाज नहीं आए। जनचेतना के उभार को रोकने के लिए गांत्तोक स्थित पलिटिकल ऑफिसर ए. जे. हॉपकिन्सन ने सिक्किम और भूटान के महाराजाओं को सलाह दी कि वे अंग्रेजी राज द्वारा भेजी गई 'केबिनेट मिशन' के सामने अपना पक्ष रखने के लिए अपना दल भेजें। महाराजकुमार की अध्यक्षता में सिक्किम का तीन सदस्यी प्रतिनिधि मण्डल दिल्ली गया और शीघ्र ही वापस आ गया। सिक्किम दरबार के माँगपत्र के प्रति उत्तर में हॉपकिन्सन से 29वीं मई 1946 को एक 'नोट'[2] जारी किया। उसके मुताबिक भारतीय संघ राज्य को सलाह दी गई कि सिक्किम को भारत में मिलाने के स्थान पर उसे अधिक अधिकार देकर एक आश्रित राज्य बनाना अधिक श्रेयस्कर होगा। क्योंकि सिक्किम का भविष्य संवैधानिक आधार पर नहीं, बल्कि हिमालय की सुरक्षा से जुड़ा हुआ है और क्षेत्रीय सुरक्षा का प्रश्न तिब्बत, चीन और रूस में घटित होनेवाली घटनाओं से प्रभावित होगा। है न यह साम्राज्यवादी 'महान खेल' (Imperial great game)? लगता है दिल्ली की जनतान्त्रिक सरकार द्वारा जनभावना के स्थान पर 'टिप्पणी' में दी गई सलाह को प्रमुखता दी गई। फलस्वरूप जनतन्त्र के मूल्य पर राजतन्त्र को प्रमुखता दी गई।

---

2. "In practice, it may well prove difficult to secure a tidy solution of the future of Nepal, Sikkim and Bhutan and even the eastern marches of Kashmir. This will largely depend on the future policy and fate of China and hence of Tibet. The government of the (Indian) Union must be prepared for complications of North-east Frontier and evolve a policy to meet them. This may well have to be that of maintaining all the principalities in virtual independence of India, but as buffer, as far as possible, (as) client states. There may be greater advantages in according Sikkim a more independent status than seeking to absorb Bhutan as well as Sikkim in the Indian Union...The government will be advised to avoid entering into fresh commitments with any one of these frontier states or seeking to redefining their status. Their importance is strategic in direct relation to Tibet and China and indirectly to Russia. Such adjustment of relations with the Union carefully be affected by those political and strategic considerations ...account of which, it is hoped, the treaty will take rather than the political niceties, which do not help defence policy." Indian Office Library Record/MSS/EUR/F-157/Secret, 4357 File No. 1, Letter No. D/4334, CA/46, and May 29, 1946 from the deptt to the PO in Sikkim.

सिक्किम की राजधानी, गांत्तोक में टाशी शेरींग, सोनम शेटींग, काजाँग तेंजींग आदि ने सिक्किम प्रजा की भलाई के लिए प्रजा सुधारक समाज की स्थापना कर रखी थी। इन लोगों ने तात्कालिक प्रचलित बेकार व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठायी। फलस्वरूप काजियों के गुरगों ने सोनम शेरींग की जमकर पिटाई कर दी। परन्तु प्रशासन उनकी रक्षा नहीं कर सका। उसी तरह दक्षिणी सिक्किमी स्थान तीमीतारक में गोबरधन प्रधान, धन बहादुर तिवारी, हरिशंकर परसाँई और काशीराज प्रधान ने प्रजा सम्मेलन बना रखा था। प्रायः उन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित पश्चिमी सिक्किम के चोखुंग स्थान पर काजी ल्हेन्डुप दोरजी खानशरपा ने प्रजा मण्डल बना रखा था। परन्तु इन तीनों संगठनों में सम्पर्क और सहयोग का अभाव था। इस कमी को पूरा करने के लिए गांतोक स्थित प्रजा सुधारक समाज ने पहल की और दिसम्बर 7, 1947 को गांत्तोक के पोलो मैदान में एक आम सभा करने का निश्चय किया। इस सभा के आयोजकों ने उपरोक्त अन्य दो संगठनों को भी इस आयोजन में भाग लेने का न्योता दिया। उस दिन सिक्किम की त्रस्त जनता ने पहले-पहल अपने नेताओं को उनकी समस्याओं पर खुले मंच से बोलते सुना। अज्ञात आशंकाओं के विपरीत जनता में अपार उत्साह था। परन्तु अनुभवहीन नेताओं के भाषण उबाऊ और अनाकर्षक रहे। ऐसी स्थिति में एक घटना घटी। आयोजकों ने टाशी शेरींग द्वारा लिखित 'सिक्किम सम्बन्धी कुछ सत्य' (A Few Facts about Sikkim) नामक पुस्तिका के नेपाली अनुवाद को पढ़ने के लिए 24 वर्षीय चन्द्रदास राई को मंच पर बुलाया। चन्द्रदास दार्जिलिंग में आयोजित राजनैतिक सभाओं में अपने विद्यार्थी जीवन के समय जाया करते थे। ऐसा भी कहा जाता है कि चन्द्रदास काँग्रेस के समाजवादी खेमे के नेताओं से प्रभावित थे।

स्वाभाविक है कि चन्द्रदास ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में थे। टाशी शेरींग की पुस्तिका के नेपाली अनुवाद की प्रतियाँ जनसभा में वितरित की गईं। पुस्तिका के प्रकरण के साथ-साथ चन्द्रदास ने जनता की भाषा में, जनता के रोज-रोज की परेशानियों की कहानी निर्भय होकर मजाकिया लहजे में बयान कर डाला। चन्द्रदास के एक-एक वाक्य पर तालियाँ बजतीं और ठहाके लगते। सिक्किम के सर्वशक्तिमान प्रभुत्ता सम्पन्न सामन्तों का इस प्रकार मखौल अनहोनी बात थी। जनसभा समाप्त होते-होते चन्द्रदास सिक्किम के पहले सार्वजनिक नेता और वक्ता के रूप में उभरे। कृतज्ञ जनता प्यार से चन्द्रदास को सिक्किम का नेहरू पुकारने लगी। सभा की समाप्ति पर उसी शाम तीनों संगठनों की एक बैठक में एक नये राजनैतिक दल, सिक्किम राज्य काँग्रेस की स्थापना की गई। बुजुर्ग भोटिया नेता टाशी शेरींग अध्यक्ष चुने गए और सर्वसम्मति से तीन-सूत्री मांग स्वीकार की गई। इन मांगों को लेकर राज्य कांग्रेस का पाँच सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल दिसम्बर 9, 1947 को महाराजा से

मिला। राज्य कांग्रेस की तीन-सूत्री माँगें ये थीं : (i) जमींदारी का उन्मूलन (ii) जनतांत्रिक और जिम्मेवार सरकार बनाने के पहले अन्तरिम सरकार का गठन, और (iii) सिक्किम का भारतीय गणराज्य में विलय।

इन चन्द दिनों में ही सिक्किम का राजनैतिक वातावरण काफी बदल चुका था। महाराजा ने काँग्रेस के प्रतिनिधियों को जमींदारों के अधिकारों पर लगाम शीघ्र ही लगाने की बात बतायी और शीघ्र ही जमींदारी उन्मूलन का वादा किया। अन्तरिम सरकार बनाने की बात भी मान ली गई। दोनों पक्षों की सहमति से भारत में विलय के प्रश्न को स्थगित कर दिया गया क्योंकि इस सम्बन्ध में भारत सरकार और महाराजा के बीच वार्तालाप चल रहा था। यहाँ दो बातों को ध्यान रखना जरूरी है : पहला, बिना नियम-विधान बनाए सरकार में शामिल होने की जल्दीबाजी और दूसरा, निकटवर्त्ती दार्जिलिंग में गोरखाराज्य की माँग। पहली बात तो ऐसी सिद्ध हुई कि नियम के अभाव में मन्त्रिमण्डल गतिरोध का शिकार बना। दूसरी बात, गोरखाराज्य का प्रश्न इतना पेचीदा हो गया है कि जाने-अनजाने वह आज भी सिक्किम के लिए सरदर्द बना हुआ है।

परन्तु तत्कालीन सिक्किम में प्रतिक्रियावाद के प्रतीक, महाराजकुमार पाल्देन थोडुंप नामग्याल ने काँग्रेस के क्रियाकलापों को चुनौती देने के लिए भोटिया भिक्षुओं, काजी जमींदारों और दरबारी पिट्ठुओं की मदद से 30 अप्रैल, 1948 को सिक्किम राष्ट्रीय पार्टी का संगठन कराया। इस नयी पार्टी का एकमात्र उद्देश्य काँग्रेस के हर पहलू का विरोध करना था। स्वाभाविक था कि राज्य काँग्रेस की माँगों के विरुद्ध प्रस्ताव पास किए गए और उनसे भारत सरकार को अवगत भी करा दिया गया। काँग्रेस अध्यक्ष टोशी शेरींग ने सिक्किम राष्ट्रीय पार्टी को, काँग्रेस का विपर्यय (Antithesis of Congress) बताया। ऐसी स्थिति में अन्तरिम सरकार तो बनी नहीं और जन-आक्रोश बढ़ता गया। काँग्रेस ने नयी स्थिति की समीक्षा की और पिछले एक साल के हालात पर भारत सरकार से विचार करने के लिए टाशी शेरींग और चन्द्रदास राई नें प्रधानमन्त्री नेहरू से दिल्ली में मुलाकात की। अपनी माँगों के समर्थन में फरवरी, 1949 में काँग्रेस ने 'लगान-बन्दी' का अभियान चलाया। शीघ्र ही चन्द्रदास और अन्य नेता गिरफ्तार कर लिए गए और टाशी शेरींग की गिरफ्तारी का सम्मन जारी किया गया। इन दमनकारी कदमों से जनाक्रोश और भड़क उठा और हजारों की संख्या में गरीब जनता गांत्तोक में इकट्ठा होने लगी। इन प्रयासों से सिक्किम प्रशासन चरमरा उठा और काँग्रेस के बन्दी रिहा कर दिए गए। परन्तु गतिरोध बना ही रहा। ऐसी स्थिति में काँग्रेस ने पहली मई, 1949 से महाराजा के विरुद्ध प्रदर्शन करना आरम्भ किया। 'जमींदारों का नाश हो।' 'प्रजातन्त्र-जिन्दाबाद।' 'जनता का राज्य कायम हो।' आदि नारों के साथ हजारों सत्याग्रहियों ने राज दरबार का घेराव किया। महाराजा ने भागकर भारत भवन (भारत सरकार का गांत्तोक स्थित

कार्यालय) में शरण ली। पलायन करते महाराज कुमार को सत्याग्रहियों ने पैदल भागने पर मजबूर किया। कोई रास्ता न देख महाराजा टाशी नामग्याल ने काँग्रेस अध्यक्ष टाशी शेरींग (मुख्यमंत्री) के नेतृत्व में पाँच सदस्यीय सरकार को 9 मई, 1949 को शपथ दिलायी।

काँग्रेस अध्यक्ष के अतिरिक्त काँग्रेस के उपाध्यक्ष दीमिक सिंह लेपचा और महामन्त्री चन्द्रदास राई काँग्रेस की तरफ से और दोरजी दोर्दल और रेशमी प्रसाद आंले ने दरबार के प्रतिनिधि के रूप में मन्त्री पद की शपथ ली। दरबार की चहेती, सिक्किम राष्ट्रीय पार्टी, का कहीं जिक्र भी नहीं था। परन्तु दरबार साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति के अनुरूप काँग्रेस को प्रभाहीन करने में व्यस्त था। ऊपर से काँग्रेस के नेताओं में अनुभव, दूरदर्शिता और अनवरत जनसंघर्ष करने के अभाव था, तब तक भारत सरकार की नीति भी साफ नहीं हो पाई थी। मन्त्रिपरिषद् के शपथ लेने के साथ ही काँग्रेस के छुटभैये नेता इतरा कर प्रशासन में दखल देने लगे। मन्त्रिपरिषद् में दरबारी और काँग्रेसी के बीच प्रत्येक विषय में रस्साकशी के चलते, प्रशासन ठप था। ऐसी स्थिति में राज्य काँग्रेस के कुछ अनुभवहीन छुटभैया नेता गांत्तोक की सड़कों पर नशे की हालत में गाली-गलौज और मारपीट पर उतर आयें। ऐसी स्थिति में इस सीमावर्त्ती राज्य में नागरिक आन्तरिक सुरक्षा को खतरे में देख भारत संघ के प्रतिनिधि, हरिश्वर दयाल ने 6 जून, 1949 को पाँचों मन्त्रियों को अपने दफ्तर में तलब किया। कहते हैं कि बिना किसी भूमिका के श्री दयाल ने सूचना दी कि वे भारत सरकार के नाम पर मन्त्रिमण्डल को बरखस्त करते हैं और खुद हुकूमत सम्भालने की जिम्मेवारी लेते हैं। हतप्रभ मंत्रीगण भारत भवन से बाहर आए।

सामन्तवाद का नया स्वरूप और प्रजातन्त्र की दूसरी लड़ाई

प्रथम जनप्रिय मन्त्रिपरिषद के भंग किए जाने के बाद सिक्किम का प्रशासन फिर एक बार पुराने अंग्रेज परस्त आई. सी. एस. अफसरों के हाथ आ लगा। जॉन लाल और नारी खुर्शेद रुस्तमजी क्रमशः दीवान बनाए गए। भूमि स्वामित्व सम्बन्धी कुछ सुधार भी किए गए। सामन्तशाही के स्थान पर अफसरशाही को लाकर प्रशासन को नया रूप दिया गया। सिक्किम राज्य काँग्रेस हतप्रभ और दिशाहीन बन गई और दरबार का प्रश्रय पा सिक्किम राष्ट्रीय पार्टी अपना प्रभाव बढ़ाने में व्यस्त थी। सीमापार तिब्बत में चीन की गतिविधियों से प्रभावित भारत सरकार लगता है कि हॉपकिन्सन के उपरोक्त 'नोट' को अमल करने में लग गई। फलस्वरूप भारतीय नौकरशाही की देख-रेख में सिक्किम में जनतन्त्र का नया नाटक शुरू हुआ। फिर क्या था? 1919 की बदनाम दोहरी (Dyarchy) प्रशासन व्यवस्था सिक्किम में लागू की गई। इसके मुताबिक महाराजा की क्षत्रछाया में जनप्रतिनिधियों से परे अफसरशाही स्वतन्त्र रूप में काम करती रही। साथ ही साथ एक सीमित और कुटिल जनतान्त्रिक

आधार पर 1953 में राज्यपरिषद् और कार्यकारी परिषद् (State Council & Executive Council) की व्यवस्था भी की गई। इस नई पहल के मुताबिक प्रजातीय और धार्मिक आधार पर (On the ground of rece and religion) सिक्किमी जनता को दो भागों में बाँटकर बिखरे हुए साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व (Fragmented communal representation) की कल्पना की गई। तुर्रा यह कि राज्य परिषद् के एक-तिहाई सदस्यों को महाराजा नामजद करते रहे। वास्तव में यो हुआ कि करीब 70 प्रतिशत नेपाली मूल के मुख्यतः हिन्दुओं को 50 प्रतिशत स्थानों पर और 25 प्रतिशत बौद्ध धर्मावलम्बी लेपचा-भोटियाओं को 50 प्रतिशत राज्यपरिषद् के स्थानों पर चुनने की मान्यता दी गई। कालान्तर में इस फार्मूलों को प्रशासन, आर्थिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में भी प्रश्रय दिया गया। सिक्किम दरबार की चहेती राष्ट्रीय पार्टी को छोड़ सभी राजनैतिक दलों ने इस घृणित साम्प्रदायिक 'पैरीटी' पद्धति (Parity System) का विरोध किया। ऊपर से तुर्रा यह कि सिक्किम का प्रशासन सामान्य सहमति (general concensus) पर कार्यकारी परिषद् चलाती थी, जिसमें मतैक्य के नाम पर महाराजा चाटुकार पार्षदों को कार्यकारी परिषद् में चुनते रहे।

दरबार की हरदम कोशिश रही कि राज्य काँग्रेस की बहुजातीय छवि खत्म हो जाय और वह नेपाली हिन्दुओं की पार्टी बन जाए, ताकि दरबार उन्हें आसानी से विदेशी नेपाली हिन्दुओं की पार्टी के रूप में बदनाम कर सके। दूसरी तरफ खुले रूप से प्रजातीय आधार पर लेपचा-भोटियों की राष्ट्रीय पार्टी को कुछ नेपाली मूल के दरबारियों की मदद से सचमुच के राष्ट्रीय दल के रूप में दरबार में पेश करता रहा। आश्चर्य है कि इस हास्यास्पद खेल में भारत सरकार, उसके सिक्किम में भेजे गए नौकरशाह और यहाँ तक कि जनतान्त्रिक दल भी चुपचाप तमाशा देखते रहे। लेकिन इस दरबारी नाटक के स्वरूप को बिगाड़ने का काम किया एक भूतपूर्व बौद्ध भिक्षु लेप्चा काजी ल्हेनडुप दोर्जी ने। काजी साहब ने सिक्किम राज्य काँग्रेस के उप सभापति के रूप में अपना राजनैतिक जीवन आरम्भ किया। जनतान्त्रिक मूल्यों से भटकती राज्य काँग्रेस को छोड़कर 1960 में सिक्किम राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना की। फिर भी अगले दो दशक तक सिक्किमी राजनैतिक क्षितिज पर छाए रहे। सम्पूर्ण सिक्किम में फैले एक मात्र राज्य परिषद् का स्थान—जेनेरल सिक्किम—पर काजी का अधिकार बना रहा। काजी साहब की महाराजकुमार और कालान्तर में महाराजा पाल्देन थोडुंप नामग्याल से अन्त-अन्त तक टक्कर रही।

ऐसी दयनीय स्थिति में करीब दो दशक में सिक्किम राज्य काँग्रेस अपनी बहुजातीय छवि खो चुकी थी और नेवार पार्टी के रूप में बदनाम हो गई थी। दूसरी तरफ सिक्किम राष्ट्रीय पार्टी अनवरत अपना प्रभुत्व बढ़ाती गई। काँग्रेस का ह्रास और राष्ट्रीय पार्टी का विकास दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू पेश करते हैं। इस बीच में काजी साहब की राष्ट्रीय काँग्रेस एक नई चुनौती के रूप में दरबारी मुसाहिबों के

सामने आ खड़ी होती है। राष्ट्रीय काँग्रेस ने राज्यपरिषद् के तीन चुनावों में भाग लिया और चुनाव परिणाम दरबारी अपेक्षाओं के विपरीत काँग्रेस के पक्ष में रहा ही नहीं। राष्ट्रीय काँग्रेस के प्रत्याशी नेपाली, लेप्चा, भोटिया, मठों और अनुसूचित जातियों के स्थानों से चुने जाते रहे। निम्नांकित तालिका राज्य परिषद के 20 सालों का चुनाव परिणाम दलों के अनुसार दर्शाती है।

सिक्किम राज्य परिषद् के चुनावी परिणाम : 1953-1973

दल विशेष	*1953*	*1958*	*1967*	*1970*	*1973*	*कुल*
1. सिक्किम राज्य काँग्रेस	6	8	2	4	2	22
2. सिक्किम राष्ट्रीय पार्टी	6	6	5	7	9	33
3. सिक्किम राष्ट्रीय काँग्रेस	-	-	8	5	5	18
4. निर्दलीय	-	-	3	2	2	07
कुल निर्वाचित स्थान	**12**	**14**	**18**	**18**	**18**	**80**

अन्तिम नामग्याल नरेश पाल्देन थोंडुप सिक्किम को संरक्षित स्थिति के स्थान पर एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में देखने लगे थे। वे उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में तिब्बत की बौद्ध सांस्कृतिक परम्परा को सिक्किमी जामा पहनाने में व्यस्त रहने लगे थे। चीनी स्थापत्य कला पर आधारित इमारतें, तिब्बती नमूने के गलीचे, पोशाक, कलाकृतियाँ आदि सिक्किमी के रूप में पेश किए जाने लगे। इस प्रकरण में सिक्किम की बहुसंख्यक नेपाली मूल की जनता का कोई स्थान नहीं बनता था। फलस्वरूप इस खोखली विरासत की कलई खुल जाती है। परन्तु अपनी धुन के पक्के नामग्याल नरेश अधिकांश जनता की भावनाओं की अनदेखी कर अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन जुटाने में संलग्न थे। दूसरी तरफ सिक्किम की जागरूक होती जनता प्रजातीय समानता के रूप में स्थापित सीमित जनतन्त्र को पूर्णतः जनतान्त्रिक बनाना चाहती थी। परन्तु नामग्याल प्रशासन अपने चाटुकार प्रशासकों के पक्षपातपूर्ण रवैये से आँखमिचौली करता रहा। राज्य परिषद के अन्तिम चुनाव (1973) में एक ऐसी ही धाँधली पकड़े जाने पर विरोध में उठी आवाज के निरादर पर जनता के असन्तोष का बाँध टूट पड़ा और उसके परिणाम दूरगामी सिद्ध हुए।

सिक्किम का विलय या साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष का विलम्बित अन्त?

1973 के राज्य परिषद की चुनाव सम्बन्धी अनियमितताओं के निराकरण के बदले उदंडता भरा उत्तर जनाक्रोश में बदल गया। राजनैतिक असन्तोष की दबी हुई ज्वाला भड़क उठी और पश्चिमी और दक्षिणी जिलों से दरबार का प्रशासन समाप्त

कर जनता राज स्थापित हो गया। थाना, कचहरी, जेल और अन्य दफ्तर जनता ने हथिया लिया। पूर्वी जिले के रंगपो, शिंगताज, रानीपुल और गांत्तोक में जनता का अनवरत प्रदर्शन जारी रहा। सिक्किम के भीतरी भागों से आम जनता गांत्तोक का घेराव करने आ पहुँची। ऐसी विकट स्थिति में भी कुछ चाटुकार दरबारी महाराजा का 50वाँ जन्मदिन मनाने के लिए आमादा थे। उसी क्षण महाराजा की पुलिस प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ बरसा रही थी। स्थिति काबू से बाहर जाते देख महाराजा और राजनैतिक दलों ने भारत सरकार से सिक्किम का प्रशासन सँभालने का आग्रह किया। भारत सरकार की पहल पर शीघ्र ही केन्द्रीय सुरक्षा बल की टुकड़ियाँ अशान्त क्षेत्रों में भेजी गईं।

एक वरिष्ठ प्रशासक बी.एस. दास को मुख्य प्रशासनिक अधिकारी (Chief Executive Officer) बनाकर प्रशासन सँभालने के लिए भेजा गया। भारत सरकार ने शीघ्र ही प्रशासनिक और पुलिस अधिकारियों की टुकड़ी भेजी ताकि दूर-दराज के क्षेत्रों में शीघ्र ही सामान्य स्थिति बहाल की जा सके। राजनैतिक दलों और महाराजा के बीच काफी मान-मनौवल के बाद 8 मई 1973 को महाराजा, भारत सरकार के प्रतिनिधि और तीन मान्य दलों के पाँच-पाँच पदाधिकारियों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। फलस्वरूप जनवरी, 1973 में संपन्न राज्य परिषद का चुनाव रद्द कर दिया गया। अगले साल 32 सदस्यीय राज्य विधान परिषद का चुनाव किया गया, जिसमें एक को छोड़ सभी स्थानों पर काजी ल्हेनडुप दोरजी के सदस्य चुने गए। काजी के नेतृत्व में मन्त्रिपरिषद् ने शपथ ली। स्वाभाविक था कि ये सब गतिविधियाँ महाराजा को नहीं जँच रही थीं और उन्होंने सिक्किम के अलग अस्तित्व के विषय में अपनी मुहिम जारी रखी। महाराजा की गतिविधियों से तंग आकर मन्त्रिपरिषद् ने सिक्किम को भारतीय संघ के साथ जोड़ने की सम्भावना पर विचार करने का आग्रह किया। इस प्रश्न पर दरबार और राजनैतिक दलों में मतभेद खुलकर सामने आया।

उपरोक्त मतभेद को हल करने के लिए और सिक्किम के भविष्य को लेकर मुख्यमन्त्री ने तत्काल जनमत संग्रह (referendum) की माँग की। फलस्वरूप 14 अप्रैल, 1975 को जनमत संग्रह कराया गया। जनता को यथास्थिति बनाए रखने या भारत के साथ निकट सम्बन्ध स्थापित करने में एक को चुनना था। लाल और सफेद दो बक्से महाराजा या काजी के प्रतीक रूप में रखे गए। लोग महाराजा की कारगुजारियों से तंग आ चुके थे और सामान्यतः जनता काजी के पक्ष में थी। इस प्रकार एक तरह से जनमत संग्रह का परिणाम पहले से ही सर्वविदित था। 97 प्रतिशत लोगों ने महाराजा के विरुद्ध और काजी के पक्ष में मत डाले। परन्तु यहाँ तक कि काजी के अन्ध भक्त भी इस स्थिति से अनभिज्ञ थे कि महाराजा की पराजय का अर्थ सिक्किम का भारत में विलय है। जनमत संग्रह के परिणाम के सन्दर्भ में मुख्यमन्त्री काजी ने भारत सरकार से आवश्यक कदम उठाने का आग्रह किया।

तदनुसार भारतीय, संसद ने 38वाँ संविधान संशोधन बिल पारित किए, जिसके अनुसार राज्यपाल, निर्वाचित विधान सभा समर्थित मन्त्रिपरिषद एवं हाईकोर्ट से सज्जित भारतीय संघ के 22वें राज्य के रूप में सिक्किम का उदय हुआ।

सिक्किम के प्रश्न पर सुनन्दा दत्तारे, बी. एस. दास, नारी खुर्शेद रुस्तम जी, ए. सी. सिन्हा आदि विद्वानों ने लिखा है। कई भारतीय पत्रकारों ने इस घटना का नाम सिक्किम का भारत में विलय दिया। दूसरी तरफ दत्तारे ऐसे पत्रकारों ने इस घटना को भारत की सोची-समझी अधिग्रहण या अतिक्रमण की नीति की परिणति बताया। अपने पत्राचारों के आधार पर अन्तिम चोग्याल के अभिन्न मित्र नारी रुस्तम जी ने, इस समस्या की मार्मिक विवेचना की और सिक्किम और पी. टी. नामग्याल की तुलना एक युनानी दुखान्त कहानी (A Greek Tragedy) से की। बी. एस. दास ऐसे विद्वान है, जिन्होंने अन्तिम चोग्याल के अन्तिम दो वर्षों में उन्हें नजदीक से देखा और परखा था। दास ने पाया कि जीवन के अन्तिम क्षणों में भूतपूर्व महाराजा राजनैतिक के बजाय एक जिद्दी और तर्कहीन अभिनेता जैसा बन गये थे। परन्तु इन सभी विवेचनाओं से परे पीछे जुड़ती अंग्रेजी साम्राज्यवाद था, जिसने अपने सिक्किमी प्रतिनिधि के उपरोक्त 'नोट' के रूप में भारत सरकार की नीति को बन्धक बना रखा था। यही कारण था कि अन्त तक चोग्याल पाल्देन, नामम्याल को भरोसा था कि उनकी सारी कारगुजारियों को नजर अन्दाज कर भारत सरकार किसी भी स्थिति में उन्हें अकेला नहीं छोड़ेगी और वे बेलगाम भारत विरोध पर बढ़ते चले गए। परन्तु वे भूल गये कि 1975, 1949 नहीं था। और भारत का प्रधानमन्त्री उदार आदर्शवादी जवाहरलाल नेहरू नहीं, बल्कि उन्हीं की बेटी परन्तु वस्तुपरक यथार्थवादी (objective realist) इन्दिरा गाँधी थी जो कि भारतीय संघ के प्रति पूर्ण समर्पित थीं। इस प्रकार सिक्किम के भारतीयकरण को हॉपकिन्सन के नोट के सन्दर्भ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष का अन्त मानना अधिक श्रेयस्कर होगा।

सन्दर्भ

1. Basnet LB : 1974, *Sikkim : A short Political History,* S. Chand & Co. Pvt. Ltd. Delhi.
2. Das, B.S. 1983: *Sikkim Saga,* Vikas Publishing House, New Delhi.
3. Dutta Ray, Sunanda K : 1984, *Smash and Grab : Annexation of Sikkim,* Vikas Publishing House, New Delhi.
4. Rustomji Nari K. : 1987, *Sikkim : A Himalayan Tragedy* Allied Publishers Pvt. Ltd., Bombay.
5. Sinha, A C : 1975, *Politics of Sikkim,* Thompson Press, Faridabad.
6. Sinha, A C : 2008, *Sikkim · Feudal and Democratic,* Indus Publishing Company, New Delhi.